13 सितम्बर 2001
नई दुनिया

सावधान हो जाइए, भूख अब बीमारी बन गई है!

मयंक शेखर

'किसी को भी भूख से मरने नहीं दिया जाएगा, अर्थव्यवस्था इतनी चुस्त-दुरुस्त बनाई जाएगी कि कोई भूख से न मरे क्योंकि गरीबों का खास तौर से ख्याल रखा जाएगा।' ऐसे बुलंद सरकारी नारों के बावजूद कोई भूख से मर जाए, ऐसा कैसे हो सकता है! तब भी अगर भुखमरी की रिपोर्ट मिलती है तो हमेशा वह जाँच के बाद कोई न कोई जानलेवा बीमारी निकल आती है क्योंकि सुदूर देहातों में जो अत्यंत दरिद्र है, वह तो भूखे पेट सोने का आदी हो चुका होता है। अतः सिर्फ दाना पेट में न जाने से उसकी मौत हो जाए, यह बात विश्वसनीय नहीं लगती। इसका मतलब है कि भुखमरी अब एक जानलेवा बीमारी का रूप लेती जा रही है जिसकी न तो कोई दवा उपलब्ध है, न ही रोकथाम का कोई टीका सरकारी अधिकारियों के पास है। अतः सिवाए इसके और कोई उपाए नहीं है कि इसे किसी न किसी अन्य बीमारी का नाम दे दिया जाए।

उड़ीसा की जिस घटना ने पूरे देश में हलचल मचा दी और आखिरकार सर्वोच्च न्यायालय तक को हस्तक्षेप करना पड़ा, उसकी सरकारी रिपोर्ट है कि लोग विषाक्त भोजन खाने से मरे हैं। सवाल है कि जिन लोगों को भोजन के लाले पड़े थे, उनके भोजन में विष कौन मिलाएगा? फिर तो यही संभव है कि खाने की किल्लत से तंग आकर उन लोगों ने जहर मिला लिया हो। लेकिन उसे भोजन में मिलाकर क्यों खाया? न ही प्रसाद खाया, न वे लोग किसी जलसे में गए तो विषाक्त भोजन खाया कैसे? दरअसल भुखमरी के यही लक्षण हैं और उड़ीसा के लिए यह असाध्य बीमारी बन चुकी है।

भुखमरी की घटना आएदिन सामने आती रहती है और हमेशा जिले के अधिकारी उसका कारण कुछ और बताते हैं। प्रायः ऐसी मौतें उन्हीं देहाती इलाकों में होती हैं जहाँ खेतिहर मजदूरों के पास सिवाए रोज मजदूरी से मिलने वाले अनाज के पेट भरने का अन्य कोई साधन नहीं होता। उड़ीसा, मध्यप्रदेश और झारखंड के आदिवासी इलाकों में तो खेती के भी साधन नहीं हैं। आम आदिवासी पत्थर तोड़कर, पत्तों के दोने बनाकर और महिलाएँ दतवन बेचकर गुजारा करती हैं। झारखंड बनने के बाद भी कोई अंतर नहीं पड़ा है। ऐसे इलाकों में तो कभी-कभी भुखमरी का पता ही नहीं चलता क्योंकि जिन दिकू (गैर आदिवासी) साहूकारों के यहाँ उनकी जिंदगी गिरवी रहती है, वे ऐसे मामलों को दबा देते हैं। अगर बात नहीं दबती तो वरिष्ठ अधिकारियों को वैसे गाँव में जाने में बड़ी कठिनाई होती है क्योंकि जब तक कुछ ऐसा-वैसा न हो जाए, तब तक उस गाँव के बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं होती।

बिहार में भी यह स्थिति उत्पन्न होने के आसार हैं। यह राज्य इस मायने में अपवाद है कि गरीबों की रैली, रैला और महारैला के लिए जिस राष्ट्रीय जनता दल सरकार के पास कभी धन की कमी नहीं होती, उसके नेता बाढ़ या सूखा जैसी प्राकृतिक आपदा से निबटने के लिए केंद्र के पास हाथ फैलाते हैं। कमाल की बात यह है कि वह पैसा भी जरूरतमंदों तक नहीं पहुँच पाता। बिहार का जो इलाका बाढ़ से प्रभावित है, वहाँ की एक खास संस्कृति है, जिसे महाजनी संस्कृति कहते हैं। इसके तहत मानसून के पहले महाजन अनाज दबाकर रख देते हैं और बाढ़ के दिनों में उन खेतिहर मजदूरों के खून का सौदा करके बेचते हैं जिनके पास खाने को कुछ भी नहीं होता। बाढ़ के दिनों में और उसके बाद महीनों तक खेतों में पानी जमा रहने के कारण काम नहीं चल पाता। शुक्र है, उन बिहारियों का, जो ऐसे दिनों में महानगरों की शरण में आ जाते हैं, जहाँ कम से कम भूखों मरने की नौबत नहीं आती।

भुखमरी की स्थिति और भी रूपों में विद्यमान है, जिसका जवाब न तो बिहार सरकार के पास है, न ही झारखंड सरकार के पास। केंद्र के निर्देश पर बिहार विधानसभा ने झारखंड विधानसभा के लिए आँख मूँदकर निचले तबके के १०० से ज्यादा कर्मचारियों का तबादला कर दिया। झारखंड विधानसभा के अध्यक्ष ने उन्हें जॉइन नहीं कराया और बिहार विधानसभा के अध्यक्ष ने यह कहकर उन कर्मचारियों को वापस लेने से इंकार कर दिया कि यह तो केंद्र के निर्देश पर हुआ है। उनमें अधिकांश ऐसे कर्मचारी हैं जो गरीब परिवार से आते हैं, जिन्हें सात महीने से तनख्वाह नहीं मिल रही है। भोजन पर संकट है, बेटियों की शादी रुकी है, बच्चों के स्कूलों की पढ़ाई छूट चुकी है। न तो इसकी चिंता झारखंड सरकार को है, न ही बिहार सरकार को। उन्हें भुखमरी की नौबत आने से कौन बचाएगा? केंद्र सरकार भी अपना पल्ला नहीं झाड़ सकती। यह मामला खाद्यान्न के भंडार का नहीं है कि खाद्य मंत्री अपने कोटे का अनाज न उठाने के लिए राज्य सरकारों को जिम्मेदार ठहराकर बच निकलने का प्रयास करें।

इस चर्चा में अब कोई दम नहीं रह गया है कि अनाज का अंकूत भंडार है और सिर्फ वितरण प्रणाली में दोष के कारण वह जरूरतमंदों तक नहीं पहुँच पाता है। जब पहुँचाने की व्यवस्था की जाती है तो रास्ते में ही चाहे जिला स्तर पर, चाहे पंचायत स्तर पर, कहीं न कहीं गाड़ी जरूर खराब होती है। जब सरकार को पता है कि अनाज रखने के लिए खाद्य निगम के पास गोदाम की कमी है तो अब तक नए गोदाम बनाने की दिशा में पहल क्यों नहीं की गई? एफसीआई कर्मचारी संघ के अध्यक्ष एच.वी. सिंह बताते हैं कि वसूली किया गया अनाज बोरा बंदी करने के बाद खुले आसमान के नीचे तिरपाल डालकर रखा जाता है। गोदामों में बोरों की परत पर परत पड़ती जा रही हैं जबकि नीचे वाले बोरों में रखा अनाज सड़ जाता है। गोदामों की छत जगह-जगह से चूती है और अदर से मरे चूहों की गंध आती है। अनाज को धूप दिखाने की किसे फिक्र है। अब यही सड़ा अनाज गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों में बाँटा जा रहा है। जाहिर है कि सड़ा गेहूँ, चावल जो खाएगा, वह तो बीमारी का शिकार होकर मरेगा ही। भुखमरी की रिपोर्ट गलत साबित होगी।

इस चर्चा में अब कोई दम नहीं रह गया है कि देश में अनाज का अकूत भंडार है और सिर्फ वितरण प्रणाली में दोष के कारण वह जरूरतमंदों तक नहीं पहुँच पाता है। जब पहुँचाने की व्यवस्था की जाती है तो रास्ते में ही चाहे जिला स्तर पर, चाहे पंचायत स्तर पर, कहीं न कहीं गाड़ी जरूर खराब होती है। जब सरकार को पता है कि अनाज रखने के लिए खाद्य निगम के पास गोदाम की कमी है तो प्रश्न यह उठता है कि अब तक नए गोदाम बनाने की दिशा में पहल क्यों नहीं की गई?

वास्तव में देश की पूरी व्यवस्था ही खतरनाक दौर में पहुँच चुकी है। सरकार ने उसी समय सांसदों के वेतन भत्ते में बढ़ोतरी की जरूरी समझा जब रिजर्व बैंक ने विकास दर के बारे में निराशाजनक रिपोर्ट दी। सबसे ज्यादा असुरक्षित महसूस करने वाला वर्ग है गरीबों का मजदूर तबका, जिनके भविष्य के बारे में एक-एक करके लोक उपक्रम की सारी कंपनियों के बीमार होते जाने से सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है। अगर सरकारी आँकड़े को ही सही माना जाए तो देश में कुल ४ करोड़ ६ लाख मजदूर हैं, जिनमें मात्र ३ करोड़ २७ लाख को रोजगार मिला हुआ है और उनमें से एक-चौथाई गरीबी रेखा से नीचे हैं। यूँ भी गरीबी रेखा से नीचे आने वालों की सही-सही पहचान मुश्किल है क्योंकि जो वास्तव में अति गरीब हैं, वे ऐसे इलाकों में रहते हैं, जहाँ तक पहुँचने का झमेला अधिकारी काहे को उठाएँ।

जो सहकारी बैंक मुख्य रूप से गरीबों की मदद के लिए बना उनका ७० हजार करोड़ रुपया फँसा पड़ा है, जिसकी वसूली नहीं हो पा रही है। सरकार एक ठोस नीति ही नहीं तय कर पा रही है कि आर्थिक ढाँचा चरमराने से रोका कैसे जाए।

चरमराती अर्थव्यवस्था को ठीक करना उतना आसान नहीं है जितना वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा बता रहे हैं। मध्यवर्ग के नौकरीपेशा लोगों पर बढ़ता बोझ उनकी क्रय शक्ति कम करता जा रहा है। कृषि पर ध्यान दिया तो ऐसे समय में जब कृषि से जीविका चलाने वाले गाँव के लोग शहर आ गए और उधर उद्योग सारे घाटे में आ गए। बैंकों और बीमा कंपनियों में रखा पैसा लोग सुरक्षित नहीं समझ रहे हैं। निजीकरण को बढ़ावा मिला तो लोक उपक्रमों का दिवाला निकल गया। ऐसी प्रतिकूल और विकट स्थितियों का सामना सरकार कैसे करती है और कितने दिनों में करती है, इस पर जनता की नजर है। विकास की दर ८ प्रतिशत नौवीं पंचवर्षीय योजना में नहीं हो पाई, अब दसवीं योजना में १० प्रतिशत का लक्ष्य कैसे पूरा होगा?